नाम	-	डॉ. मोती लाल शाकार
महाविद्यालय का नाम	-	दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
संकाय	-	कला
पदनाम	-	सहायक प्राध्यापक
विषय	-	भाषाविज्ञान
शीर्षक	-	भोलाराम का जीव- कहानी

भोलाराम का जीव- कहानी

डॉ. मोती लाल शाकार
सहायक प्राध्यापक
भाषाविज्ञान विभाग
दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर

भोलाराम का जीव' कहानी में पौराणिक कथा को आधार बनाकर कहानी में व्यंग्य को निर्मित किया है। धर्मराज, चित्रगुप्त और यमराज तीनों ही बड़े चिन्तित होकर सोच रहे हैं कि पाँच दिन पहले जीव त्यागने वाले भोलाराम के जीव को लेकर यमदूत इस लोक में क्यों नहीं पहुँचा। उन्हें चिन्तित देखकर वहाँ पहुँचे नारद ने उनकी समस्या का हल ढूँढने हेतु पृथ्वीतल पर जाने की योजना बनाई। नारद पृथ्वी पर पहुँच गए। भोलाराम के जीव की तलाश में नारद अनेक स्थानों पर भटकने के बाद एक दफ्तर पहुँचते हैं और वहाँ के कर्मचारियों की रिश्वत लेकर ही काम करने की पद्धति को देखकर हैरान ही नहीं, परेशान भी हो जाते हैं। अपनी पेंशन पाने के लिए भोलाराम ने रिश्वत नहीं दी थी। जब तक दरख्वास्तों पर वजन नहीं रखा जाता कोई काम नहीं होता। दफ्तर के बड़े बाबू नारद से साफ-साफ कहते हैं 'आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं; उस पर वजन रखिए। 'रिश्वत के रूप में नारद अपनी वीणा दे देते हैं। वीणा के रूप में वजन रखते ही पेंशन की फाइलों में से उन्हें भोलाराम के जीव की आवाज सुनाई देती है। नारद भोलाराम के जीव से कहते हैं, 'मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो, स्वर्ग में तुम्हारा इन्तजार हो रहा है 'पर भोलाराम के जीव की विवशता है कि वह पेंशन की दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता। इसी कथा-सूत्र के व्यंग्यात्मक उपयोग द्वारा लेखक ने भ्रष्टाचार के अमानवीय रूप पर मार्मिक चोट की है। एक आम इंसान को

जिन्दगी में शासन तन्त्र में फैले भ्रष्टाचार के कारण कितनी ही कठिनाई से गुजरना पड़ता है तथा इन सबसे लड़ने के बावजूद वह सफलता हासिल नहीं कर सकता है।

'भोलाराम का जीव' कहानी में व्यंग्य का मुख्य लक्ष्य सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था है पर लेखक का उद्देश्य केवल इतना ही नहीं है। उसका उद्देश्य व्यंग्य को मानवीय त्रासदी और करुणा तक ले जाना है और वह यह दिखाना चाहते हैं कि इस व्यवस्था में मनुष्य की क्या हालत हो चुकी है। इस सच्चाई को लेखक ने इस कहानी में चित्रगुप्त जो एक काल्पनिक चरित्र है, के द्वारा भ्रष्टाचार की स्थिति को बयान किया है 'महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को फल भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। होजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे के अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डिब्बे-के-डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी ने, मरने के बाद भी खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया। 'भ्रष्टाचार के इस खुलेआम व्यवहार से आम जनता जानते हुए भी चुपचाप देखने के अलावा कुछ नहीं कर सकती।' क्रूर आर्थिक तन्त्र में पिसते हुए आदमी की यातनापूर्ण स्थिति की ओर भी लेखक ने संकेत किया है।

इसी तरह ठेकेदारों, इंजीनियरों, ओवरसीयरों के कारनामों को लेकर व्यंग्य किये गये हैं 'बड़े-बड़े इंजीनियर भी आ गये हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवरसीयर हैं, जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भर कर पैसा हड़पा जो कभी काम पर गये ही नहीं।' इन सबके साथ लेखक ने क्रूर आर्थिक स्थिति से संघर्ष करते आदमी की यातनापूर्ण स्थिति की ओर भी संकेत किया है। भोलाराम को सेवानिवृत्ति के बाद पाँच वर्ष तक पेंशन न मिलना

और उसके लिए लगातार भेजी गई दरख्वास्तों पर कोई कार्यवाही न होना, सरकारी तन्त्र के भ्रष्टाचार को उजागर करता है।

'भोलाराम की पत्नी भ्रष्टाचार की इस नृशंस प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है पचास-साठ रुपया महीना पेंशन मिलता है, तो कुछ और काम करके गुजारा हो जाता है। पर क्या करें? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गये और अभी तक एक कौड़ी भी नहीं मिली।'

भोलाराम का जीव स्वर्ग में न पहुँचने के कारण नारद उसकी खोज करने पृथ्वी पर आये हैं। भोलाराम की खोज करते-करते नारद उस दफ्तर में पहुँच गए जहाँ भोलाराम पेंशन की प्राप्ति के लिए दरख्वास्तों पर दरख्वास्तें भेजकर थक गया। उसके जीते जी उसे पेंशन नहीं मिल पाई।

लेकिन मरने के बाद उन्हीं फाइलों में उसके प्राण अटके हुए है। उसका जीव उन फाइलों को छोड़कर स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता। नारद द्वारा भोलाराम के जीव को ढूँढ लेने पर वे साथ चलने को कहते हैं परन्तु भोलाराम का जीवन पेंशन की फाइलों को छोड़कर नहीं आना चाहता। 'मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यही मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता।' इस तरह कहानी में व्यवस्था को व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है और इसमें पड़े हुए आदमी की करुण स्थिति की ओर संकेत किया गया है।

दफ्तरों की भ्रष्टाचारी प्रवृत्तियों के कारण सामान्य जन की तकलीफें बहुत बढ़ गई हैं, और वह इस प्रकार की व्यवस्था के आगे मजबूर है। भोलाराम की निर्यात इतनी फाइलबद्ध हो चुकी है कि उसका जीव उन फाइलों को छोड़कर स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता। इस तरह यह कहानी केवल व्यंग्य को साधने वाली ही नहीं बल्कि इसमें ऐसा त्रासद-व्यंग्य छिपा है जो सामाजिक-राजनीतिक स्थिति को अनावृत्त करता हुआ मनुष्य की स्थिति को उद्घाटित करता है।

परसाई जी के लेखन में समाज में फैले भ्रष्टाचार के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया क्यों व्यक्त हुई है यह समझने के लिए उनके आलोचकों की टिप्पणी और उनके स्वयं के वक्तव्य देखें। हरिशंकर परसाई के सम्बन्ध में आलोचकों की महत्वपूर्ण टिप्पणी है। आलोचक उनके व्यक्तित्व को उनकी रचना से बड़ा मानते हैं। यह व्यक्ति ऐसा क्या रहस्य छिपाये हुए है, इसे हम मध्य प्रदेश के उनके जिगरी दोस्तों के संस्मरणों में देख सकते हैं। लेकिन व्यक्तित्व निर्माण की वे विशेष परिस्थितियाँ जिन पर हम ढाल देना चाहते हैं उनका सबसे विश्वसनीय स्रोत स्वयं लेखक का आत्म वक्तव्य है जो सूत्र रूप में हमारे लक्ष्य की पूर्ति करता है। हमारा तात्पर्य 'गर्दिश के दिन' से है। वे सीधे और बेलौस ढंग से बताते हैं कि वह एक ऐसे आदमी हैं, जो हँसता है, जिसमें मस्ती है, जो ऐसा तीखा है, कटु है-इसकी अपनी जिन्दगी कैसी रही है-एक निहायत कटु, निर्मम, और धोबी पछाड़ आदमी की। तीखी जिन्दगी तो होगी ही जब तीखी घटनाएँ पल्ला पकड़े रहेंगी। यानी प्लेग की वे रातें, 1936-37 की, जब सब लोग गाँव छोड़कर चले गये थे। काली रातें थीं। कुत्ते तक बस्ती छोड़ गये थे। जब खुद की आवाजें ही डरा देती थीं। जब मरणासन्न माँ के सामने सब लोग आरती गाते-ओम जय जगदीश हरे गाते-गाते पिता सिसकने लगते और माँ बिलखकर बच्चों को हृदय से चिपटा लेतीं। और सब दुःख में डूब जाते। माँ की मृत्यु के बाद पिता जिये तो लेकिन लगातार बीमार, हताश, निष्क्रिय और अपने से ही डरते हुए। पाँचों भाई बहनों में मृत्यु का अर्थ समझने की स्थिति सिर्फ परसाई की थी। धन्धा सब ठप्प। जमा पूँजी खायी जाने लगी। ऐसे में ही बहिन के विवाह का मनहूस उत्सव करके एक बोझ कम किया गया।'

परसाई लिखते हैं कि 'मुझे चूहों ने ही नहीं मनुष्य नुमा बिच्छुओं और साँपों ने भी बहुत काटा है और जब भी ऐसा होता है तब किसी भी व्यक्तित्व में एक धार आ जाती है। एक तीव्र प्रतिक्रिया प्रतिपल होती रहती है। यथार्थ की टक्करों से ऐसा बोध पैदा हो जाता है, जिसमें उस सगाज को बदल डालने की विकट इच्छा का

होना लाज़िमी होता है। बशर्ते सोच की दिशा सकारात्मक हो।' परसाई के व्यक्तित्व में तभी यह परिवर्तन हुआ था कि वे कभी भी झूठ और पाखण्ड बर्दाश्त नहीं कर सके थे। परसाई बताते हैं कि उसी उम्र से दिखाऊ सहानुभूति से उन्हें बेहद नफरत हो गयी थी। 'अभी भी दिखाऊ सहानुभूति वाले को चाँटा मार देने की इच्छा होती है। जब्त कर जाता हूँ वरना कई शुभचिन्तक पिट जाते।' बिना किसी लागलपेट के जिस मुंहफट भाषा में यह बात कही गयी है, उससे कोई भी सहज यह अन्दाजा लगा सकता है कि झूठ और पाखण्ड के प्रति उनकी चिढ़ और नफरत कितनी प्रचण्ड थी।

उस दौर में परसाई ने 'तीन विधाएँ' भी सीखों जिनके बिना या तो वे मर जाते या पागल हो जाते। गरीबी पर बात करना और बहस करना एक बात है और गरीबी की जिन्दगी बिताना बिल्कुल बात। पहली विद्यार्थी दशा में बिना टिकट गाड़ी में बैठ जाना बेखटके। दूसरी विधा सीखी-उधार माँगने की। बिल्कुल निःसंकोच ! और तीसरी विधा-बेफिक्री। जो होना होगा, होगा और क्या होगा ? ठीक ही होगा और इस तरह गर्दिश के दिनों में उस चेतना की नींव पड़ी, व्यक्तित्व का वह हिस्सा बना जो तमाम उम्र लेखक की दृष्टि के रूप में प्रतिफलित होता रहा। परिस्थितियाँ या गर्दिशें हमेशा रह सकती हैं लेकिन यहाँ हमारा संकेत केवल उस दौर की गर्दिश से है जिसे बचपन से युवावस्था का दौर कहा जाता है। क्योंकि इस दौर की परिस्थितियों से लेखक की मानसिकता और व्यक्तित्व निर्माण का गहरा सम्बन्ध है। जहाँ तक दूसरे पक्ष अर्थात् लेखक की व्यक्तिगत प्रकृति की बात है-परसाई ठहरे बहुत भावुक, संवेदनशील और बेचैन तबियत के आदमी।